~~कि इस अधि~~ जिससे फलस्वरूप 1937 ई० में प्रान्तों को प्रान्तीय स्वराज प्राप्त हो सका। लेकिन 1861 के एक्ट द्वारा केन्द्र तथा प्रांतों के कार्यक्षेत्र को अलग करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। जो की संघीय व्यवस्था में होता है। इस अधिनियम द्वारा सपरिषद् गवर्नर-जनरल समस्त भारत के लिए और सपरिषद् गवर्नर अपने प्रांत के लिए कानून बना सकता था। इसके अतिरिक्त कुछ मामलों में प्रान्तों को गवर्नर-जनरल की अनुमति कानून बनाने से पूर्व लेनी होती थी। इस अधिनियम का एक तीसरा महत्व यह है कि इससे भारत में उत्तरदायी संस्थाओं का सूत्रपात हुआ।

दोष :- इस अधिनियम के 'अध्यादेश' व 'विभागीय पद्धति' के उपबन्ध आज तक मौजूद है। फिर भी यह अधिनियम दोषपूर्ण था और भारतीयों को सन्तुष्ट नहीं कर सका। भारतीय जनता को वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त हो सका और विधान परिषद् के अधिकार अत्यन्त सीमित हो गये। विधान परिषद् का कार्य केवल कानून बनाना था इसका प्रशासन अथवा वित्त अथवा प्रश्न इत्यादि पूछने का कोई अधिकार नहीं था। गवर्नर जनरल को संकटकालीन अवस्था में विधान परिषद् की अनुमति के बिना ही अध्यादेश जारी करने की अनुमति थी। यह अध्यादेश अधिकतम 6 माह तक लागू रह सकता था। विधान परिषदों में राजा, महाराजा या जमींदार की ही नियुक्ति की जाती थी। जोकि सरकार के ही चापलूस होते थे फिर इन परिषदों को कोई वास्तविक अधिकार भी प्राप्त नहीं थे। प्रो॰ कूपलैण्ड के शब्दों में "ये परिषदें देशी नरेशों के उन परम्परागत दरबारों की तरह होती थी जिनका आयोजन प्रजा के विचारों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए किया जाता था।"

विधायिका परिषदों की शक्तियाँ सीमित थी। उन्हें पार्लियामेंट की तरह काम करने की आज्ञा नहीं दी गई। उन्हें कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों को हटाने का कोई अधिकार नहीं दिया गया। गवर्नर-जनरल को अपनी विधान परिषदों और प्रान्तीय विधान परिषदों के कानूनों पर निषेधाधिकार दिया गया। इससे सारी अन्तिम शक्तियाँ गवर्नर-जनरल के हाथ में आ गई और वह न केवल शासन-सम्बन्धी मामलों में बल्कि कानूनी मामलों में भी अपनी मनमानी कर सकता था। और अन्त में यह कह सकते है कि इस अधिनियम के द्वारा भारत में कोई उत्तरदायी सरकार स्थापित नहीं हो सका।

1861 ई० के अधिनियम की आवश्यकता → 1861 ई० के अधिनियम की आवश्यकता का सबसे बड़ा कारण 1857 ई० की क्रान्ति है। क्रान्ति ने अंग्रेजों की आँखे खोल दी। यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि शासक तथा शासित में वास्तविक सम्पर्क का सर्वथा अभाव है क्योंकि भारतीयों को व्यवस्थापिका में कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। अंग्रेज यह समझ नहीं पा रहे थे कि उनके शासन की भारतीयों पर क्या प्रतिक्रिया पड़ती है। इस तथ्य को सर्वप्रथम सैयद अहमद ने सरकार के सामने पेश किया। गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी परिषद् के एक सदस्य सर बार्टल फ्रेरी ने 1861 ई० में लिखा - "परिषद् में भारतीय सदस्य का होना आवश्यक है नहीं तो इसके परिणाम भयंकर हो सकते हैं। क्योंकि (हम बिना समझे-बूझे ही कि अमुक कानून अनुकूल है या प्रतिकूल) है, करोड़ों भारतीयों के लिए जो कानून बनाते है। उनकी प्रतिक्रिया को हम केवल विद्रोह के द्वारा ही जान पाते है।"

द्वितीय, सभी प्रान्तों के कानून-निर्माण कार्य में सर्वोच्च धारा-परिषद् भी कठिनाई का अनुभव कर रही थी। यह केन्द्रीय निकाय स्थानीय समस्याओं से बिल्कुल अनभिज्ञ थी। इस दोष को आंशिक रूप से 1853 ई० में दूर किया गया था जब प्रत्येक प्रान्तीय सरकार का एक-2 प्रतिनिधि परिषद् में विधि-निर्माण के लिए आमंत्रित किया जाता। किन्तु यह तरीका यथेष्ट नहीं था। अतएव यह आवश्यकता अनुभव की गई कि सर्वोच्च धारा-परिषद् में भारतीयों की इच्छा, उनकी परम्परा एवं रीति-रिवाजों को जानने के लिए उनको अधिक प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।

तृतीय, सर्वोच्च धारा परिषद् अपने कार्यक्षेत्र में एक तरह की छोटी पार्लियामेंट बन गई थी। इसने पार्लियामेंट्री कार्यों एवं विधियों को अपनाना आरम्भ कर दिया था। यह परिवर्तन ब्रिटिश सरकार की इच्छा के विरुद्ध था। ब्रिटिश सरकार तो केवल इतना ही चाहती थी कि विधि-परिषद् विधि निर्माण में अपना सूक्ष्म एवं उचित परामर्श कार्यकारिणी को दिया करे। 1861 ई० के अधिनियम द्वारा विधान-परिषदें के कार्यों को निर्धारित किया गया।

64

निष्कर्ष

इस अधिनियम में जहाँ अच्छाइयाँ थी, वहीं पर दोष/बुराइयों का भी समावेश था। 1861 का भारतीय अधिनियम जहाँ एक ओर उत्तरदायी सरकार स्थापित करने में असमर्थ रहा वहीं दूसरी ओर लिटन की बर्बर नीतियों से जनता में असंतोष व्याप्त हो गया था। 1861 के अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित विधान परिषदों में सदस्यों में वृद्धि, उनके निर्वाचन की व्यवस्था व शक्तियों में वृद्धि की माँग की जिसके फलस्वरूप 1892 में नया अधिनियम बना और इसके साथ ही इसने भावी विकास एवं संवैधानिक प्रगति के मार्ग को प्रशस्त किया।

1861 की समीक्षा → 1861 का भारतीय परिषद् अधिनियम भारत के वैधानिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत के संवैधानिक विकास के इतिहास में 1861 ई० का भारतीय परिषद् अधिनियम एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इस अधिनियम के द्वारा प्रथम बार भारतीय सदस्य को कार्यकारिणी परिषद् में मनोनीत किया गया। इसे 'संघ की नीति' भी कहते हैं क्योंकि प्रशासन में भारतीयों को सम्मिलित किया गया। इसे विनम्र निरंकुशता की नीति भी कहते हैं। निरंकुश इसलिए कि सरकार पहले की तरह ही अनुत्तरदायी रही एवं 'विनम्र' इसलिए कि अपने देश के प्रशासन में प्रथम बार भारतीय सम्मिलित किये गये।